ISSN: ISSN: 2583-5149 | Special Edition Vol. 2 | March 2026

भगवद्गीता में कर्तव्य एवं आत्मबोध

ओम प्रकाश कुमार
शोधच्छात्र (संस्कृत विभाग)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भगवद्गीता में प्रतिपादित 'कर्तव्य' (धर्म एवं कर्म बोध) तथा 'आत्मबोध' (आत्मज्ञान) अर्थात् आत्मा के स्वरूप की अवधारणाओं का दार्शनिक, शास्त्रीय एवं समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। भगवद्गीता भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी का एक प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का समन्वित जीवन-दर्शन प्रस्तुत हुआ है। इस पत्र में गीता के मूल संस्कृत पाठ तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और माधवाचार्य के भाष्यों के आलोक में यह प्रतिपादित किया गया है कि निष्काम कर्म चित्तशुद्धि का साधन है, जबकि आत्मज्ञान मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन है। इस शोध का मुख्य प्रतिपाद्य यह है कि भगवद्गीता में कर्तव्य और आत्मबोध परस्पर विरोधी न होकर, बल्कि परस्पर पूरक सिद्धान्त हैं। मनुष्य को स्वयं का कर्तव्यबोध उसको नैतिक, सामाजिक एवं कर्मशील जीवन हेतु प्रेरित करता है, जबकि आत्मबोध उसे अविद्या, अहंकार और कर्मबन्धन से मुक्त कर ब्रह्मतत्त्व की अनुभूति कराता है। भगवद्गीता का दार्शनिक सिद्धांत कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के त्रिविध मार्गों के माध्यम से मनुष्य को लौकिक कर्तव्य और पारलौकिक मुक्ति के बीच समन्वय स्थापित करने की शिक्षा देता है।

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि भगवद्गीता का कर्तव्य-दर्शन और आत्मबोध-दर्शन सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है तथा आधुनिक युग में भी नैतिकता, शिक्षा, प्रशासन, प्रबंधन एवं मनोविज्ञान के

क्षेत्र में अत्यन्त प्रासंगिक है। इस प्रकार भगवद्गीता मानव जीवन के समग्र नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान हेतु एक समन्वित दार्शनिक आधार प्रदान करती है।

मुख्य शब्द: भगवद्गीता, कर्तव्य, धर्म, आत्मबोध, निष्काम कर्म, ज्ञानयोग, भक्तियोग, मोक्ष।

भूमिका : -

भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक परम्परा का एक अत्यंत ही प्रामाणिक और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसको हम सभी उपनिषदों का सार तथा महाभारत का उपनिषद् कह सकते है। भगवद्गीता, महाभारत के भीष्मपर्व के अध्याय 23 से 40 तक में स्थित है और इसमें कुल 18 अध्याय तथा 700 श्लोक हैं। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य संवाद के रूप में कर्म, धर्म, आत्मा, ब्रह्म, भक्ति, ज्ञान और मोक्ष जैसे गूढ़ दार्शनिक विषयों का अत्यंत सुसंगठित और समन्वित प्रतिपादन किया गया है। भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता में गीता को व्यवहारिक दर्शन (Practical Philosophy) का सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता है। भगवद्गीता के समतुल्य शायद ही कोई ऐसा धर्म ग्रंथ होगा जिस पर इतना लिखा गया। भगवद्गीता समय-समय पर यह और भी आवश्यक और मार्गदर्शन होती जा रही है। एकदम साधारण भाषा में अगर कहे तो भगवद्गीता एक उत्तर है दुनिया के हर प्रश्न का। जीवन से जुड़ा ऐसा कोई प्रश्न नहीं जिसका उत्तर श्री कृष्ण भगवद्गीता में नहीं देते, हमारे मन मस्तिष्क में कोई भी शंका, परेशानी,चिंता किसी भी तरह का आवेग या किसी भी तरह की दुविधा हो सभी का उत्तर भगवद्गीता में निहित हैं,क्योंकि यह जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान कर्म और ज्ञान के समन्वय के माध्यम से प्रस्तुत करती है।

महाभारत के युद्धभूमि में अर्जुन का विषाद मानव मन की सार्वभौमिक समस्या का प्रतीक है। अर्जुन युद्ध के कर्तव्य से विमुख होकर मोह, करुणा और संदेह से ग्रस्त हो जाते है। इस स्थिति में श्रीकृष्ण उसे आत्मा के शाश्वत स्वरूप, कर्म के अनिवार्यत्व और धर्म के वास्तविक स्वरूप का उपदेश देते हैं। इस प्रकार भगवद्गीता केवल एक

धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व, नैतिक दायित्व और आध्यात्मिक मुक्ति का समन्वित दर्शन है। गीता में 'कर्तव्य' (धर्म एवं कर्म) और 'आत्मबोध' (आत्मज्ञान) दो ऐसे केंद्रीय विषय हैं, जिन पर सम्पूर्ण गीता का दार्शनिक सिद्धांत आधारित है। कर्तव्य मानव को सामाजिक और नैतिक जीवन में सक्रिय बनाता है, जबकि आत्मबोध उसे आध्यात्मिक उन्नति और मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। भारतीय दर्शन में कर्म और ज्ञान के सम्बन्ध को लेकर विभिन्न मत-मतान्तर पाए जाते हैं। पूर्वमीमांसा दर्शन कर्म को प्रधान मानता है, जबकि उत्तरमीमांसा (वेदान्त) ज्ञान को मोक्ष का एकमात्र साधन मानता है। भगवद्गीता इन दोनों प्रवृत्तियों का समन्वय करते हुए कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का त्रिविध मार्ग प्रस्तुत करती है।

गीता का कर्तव्यबोध 'निष्काम कर्म' की अवधारणा पर आधारित है, जिसमें व्यक्ति फल की आसक्ति त्यागकर कर्म करता है। यह अवधारणा भारतीय नैतिक दर्शन में एक क्रांतिकारी सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित हुई। वहीं आत्मबोध की अवधारणा आत्मा के नित्य, अविनाशी और ब्रह्मस्वरूप होने के ज्ञान पर आधारित है। आत्मबोध के द्वारा जीव अविद्या, अहंकार और कर्मबन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। आधुनिक युग में भगवद्गीता का अध्ययन केवल धार्मिक या दार्शनिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा, बल्कि मनोविज्ञान, नैतिक दर्शन, शिक्षा, प्रबंधन, नेतृत्व और जीवन-दर्शन के क्षेत्र में भी इसका व्यापक उपयोग हो रहा है। गीता का कर्तव्य-सिद्धान्त आधुनिक कर्म-संस्कृति और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ करता है, जबकि आत्मबोध मानसिक शान्ति, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व विकास का आधार बनता है।

इस शोध में भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्तव्य और आत्मबोध की अवधारणाओं का दार्शनिक, शास्त्रीय तथा समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि गीता में कर्म और ज्ञान किस प्रकार परस्पर विरोधी न होकर पूरक हैं तथा मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में इनकी भूमिका क्या है। इस प्रकार यह शोध भगवद्गीता के कर्तव्य-दर्शन और आत्मज्ञान-दर्शन को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

भगवद्गीता में कर्तव्य की अवधारणा : -

श्रीमद्भगवद्गीता न केवल एक धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि यह मानव जीवन के प्रबंधन का एक मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक मार्गदर्शक भी है। गीता में कर्तव्य केवल कार्य का संपादन नहीं है, बल्कि यह 'स्वधर्म' और 'ईश्वर अर्पण बुद्धि' का संगम है। जहाँ संसार कर्मों के बंधन में बंधा है, वहीं गीता उस मार्ग को प्रशस्त करती है जिसपर कर्म करते हुए भी बंधन से मुक्ति संभव है। सर्व प्रचलति विषय है कि गीता में वर्ण-व्यवस्था और कर्तव्य का आधार निहित है,वस्तुतः इसे गुण-कर्म विभाग के रूप में देखा जा सकता है। गीता की वर्ण-व्यवस्था जन्मजात श्रेष्ठता पर नहीं, बल्कि व्यक्ति के अंतर्निहित गुणों और कार्यों पर आधारित है। भगवान श्रीकृष्ण गीता चौथे अध्याय के 13वें श्लोक में उद्घोषित करते हैं:

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ॥[1]

अर्थात्, चारों वर्णों की रचना गुण और कर्मों के विभाग के अनुसार की गई है। यहाँ 'गुण' का अर्थ प्रकृति के सत्व, रज और तम से है, जो व्यक्ति के स्वभाव को निर्धारित करते हैं। वर्ण-विभाजन समाज के कार्यों को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए एक उपयुक्त व्यवस्था थी, जिसमें 'जन्म' का कहीं उल्लेख नहीं है।

आश्रम व्यवस्था और कर्तव्य

कर्तव्य केवल व्यावसायिक नहीं होता, बल्कि जीवन के विभिन्न पड़ावों से भी जुड़ा है। मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है:

ब्रह्मचर्य: 25 वर्ष की आयु तक ज्ञानार्जन और अनुशासन का समय

गृहस्थ: 50 वर्ष की आयु तक सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन。

[1] भगवद्गीता ४/१३

वानप्रस्थ: 75 वर्ष की आयु तक आध्यात्मिक खोज और समाज को परामर्श देना。

संन्यास: इसके पश्चात पूर्ण त्याग और मोक्ष की साधना

हालाँकि, गीता संन्यास को एक 'मानसिक अवस्था' के रूप में अधिक देखती है, न कि केवल बाहरी त्याग के रूप में।

संन्यास और कर्मयोग संबध

गीता में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है,संन्यास (कर्मों का त्याग) और कर्मयोग (कर्मों का संपादन) में कौन श्रेष्ठ है?। गीता का स्पष्ट आदेश है:

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥[2]

अर्थात्, संन्यास और कर्मयोग दोनों मोक्षदायी हैं, किंतु कर्मयोग (निष्काम भाव से कर्म करना) संन्यास से श्रेष्ठ है। यहाँसंन्यास का अर्थ 'अनासक्ति' से है, न कि क्रियाओं के भौतिक परित्याग से। लोकमान्य तिलक के अनुसार, सच्चा संन्यासी वह है जिसमें त्याग की भावना निरंतर विद्यमान रहती है, चाहे वह कर्मों में प्रवृत्त ही क्यों न हो।

लोकसंग्रह: सामाजिक कर्तव्य की सर्वोच्चता : -

गीता के कर्तव्य-बोध का सबसे महत्वपूर्ण पहलू 'लोकसंग्रह' है। इसका अर्थ है,समाज का कल्याण और मर्यादा की रक्षा। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं:

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:। लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥[3]

[2] भगवद्गीता ५/२

[3] भगवद्गीता ३/२०

ज्ञानी पुरुष को कर्म करने की कोई व्यक्तिगत आवश्यकता नहीं होती, फिर भी वह समाज को दिशा देने के लिए कर्म करता है। यदि श्रेष्ठ पुरुष कर्म करना छोड़ देंगे, तो सामान्य जन भी निकम्मे हो जाएंगे और समाज छिन्न-भिन्न हो जाएगा। अतः, लोकसंग्रह के लिए स्वधर्म का पालन अनिवार्य है।

धर्म और कर्तव्य का दर्शन : -

'धर्म' शब्द केवल पूजा-पाठ नहीं, बल्कि 'धारण' करने की शक्ति से संबंधित है। धर्म की व्याख्या करते हुए महाभारत में कहा गया हैं कि -

धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयति प्रजा:। यः स्यात् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।। [4]

समाज को जो शक्ति बांधे रखती है, वही धर्म है। नीति, कर्तव्य और धर्म गीता के संदर्भ में एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जब भी समाज में इस 'धर्म' की हानि होती है, तब ईश्वर का अवतार होता है ताकि व्यवस्था पुन: स्थापित की जा सके, जैसा की भगवद्गीता में कहा गया है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥[5]

भगवद्गीता में कर्तव्य की अवधारणा केवल कर्म करने तक सीमित नहीं है, बल्कि वह 'स्वधर्म' (अपनी प्रकृति के अनुरूप कार्य), 'निष्काम कर्म' (फलासक्ति का त्याग) और 'लोकसंग्रह' (समाज का कल्याण) का एक दिव्य संगम है। गीता संदेश देती है कि कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता; यदि उसे कर्तव्य मानकर और ईश्वर को अर्पित करके किया जाए, तो वही कर्म मोक्ष का द्वार बन जाता है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नर:। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥[6]

---

[4] महाभारत शान्ति पर्व

[5] भगवद्गीता ४/७

[6] भगवद्गीता १८/४५

(अर्थात्, अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में लगा हुआ मनुष्य ही परम सिद्धि को प्राप्त करता है।)

श्रीमद्भगवद्गीता के कालातीत सिद्धांतों को यदि 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि आज हम 'हाइपर-कनेक्टेड' समाज में हैं जिस समाज में इंसान मानसिक अवसाद और दिशाहीनता से जूझ रहा है, उसका समाधान गीता के 'कर्तव्य-बोध' में ही निहित है।

आज की इस भागदौड़ भरी दुनिया में, जहाँ सफलता का पैमाना केवल भौतिक उपलब्धियाँ और 'सोशल मीडिया वैलिडेशन' बनकर रह गया है, गीता का निष्काम कर्म एक क्रांतिकारी विचार है। आधुनिक मनुष्य अक्सर 'बर्नआउट' का शिकार इसलिए होता है क्योंकि वह कर्म से अधिक उसके परिणामों की चिंता में घुला रहता है। गीता हमें सिखाती है कि हम प्रक्रिया (Process) पर ध्यान केंद्रित करें, न कि केवल परिणाम (Outcome) पर।

स्वधर्म की अवधारणा आज के करियर चयन और 'वर्क-लाइफ बैलेंस' के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। जब एक व्यक्ति अपनी नैसर्गिक प्रतिभा (Inherent Qualities) के विरुद्ध जाकर केवल आर्थिक लाभ के लिए कार्य करता है, तो वह तनावग्रस्त रहता है। गीता के अनुसार अपनी प्रकृति के अनुकूल कार्य करना ही श्रेष्ठ है।

इसके अतिरिक्त, लोकसंग्रह का सिद्धांत आज के 'कॉर्पोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी' और पर्यावरणीय चेतना का आधार बन सकता है। जब कोई कंपनी अपने मुनाफे का एक हिस्सा समाज के कल्याण, पर्यावरण संरक्षण और शिक्षा जैसे सामाजिक कार्यों में स्वेच्छा से लगाती है, तो उसे कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी कहते हैं। यह व्यावसायिक लाभ के साथ-साथ सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारी निभाने की एक प्रक्रिया है। व्यक्तिगत लाभ से ऊपर उठकर समाज और प्रकृति के संरक्षण के लिए कार्य करना ही वास्तविक 'कर्तव्य' है।

21वीं सदी के डिजिटल युग में, जहाँ नैतिकता की परिभाषाएँ धुंधली हो रही हैं, गीता का संदेश एक 'कंपास' की भाँति कार्य करता है। यह हमें सिखाता है कि कार्य केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और सामाजिक सेवा का मार्ग है। यदि हम "योग: कर्मसु कौशलम्" (कर्मों में कुशलता ही योग है) को अपना लें, तो हम न केवल एक कुशल पेशेवर, बल्कि एक संतुलित और शांत मनुष्य भी बन सकते हैं।

भगवद्गीता में आत्मबोध की अवधारणा

आत्मा का स्वरूप:-

संपूर्ण उपनिषद, गीता तथा अन्य भारतीय दर्शनों का एकमात्र लक्ष्य है, आत्मज्ञान अर्थात आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानना। आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जान लेने के बाद फिर मनुष्य को किसी प्रकार का भय, मोह, शोक इत्यादि नहीं रहता। वह सभी प्रकार के दुखों से निवृत हो जाता है। किंतु आत्मज्ञान होना सर्व सुलभ नहीं है, गूढ़ तत्वों को जानने वालों के लिए भी यह अत्यंत ही निरीह है।

कठोपनिषद में यम और नचिकेता के संवाद में आत्मा के स्वरूप के बारे में विस्तार से जानकारी मिलती है। तृतीय वर के रूप में नचिकेतान ने यम से आत्मरहस्य के बारे में जब पूछता है, कि मरे हुए मनुष्य के बारे में कोई बोलता है शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से अतिरिक्त देहान्तर से सम्बन्ध रखनेवाला आत्मा रहता है। और कोई बोलता है कि आत्मा नहीं रहता। इसका हमें प्रत्यक्ष अनुमान इत्यादि प्रमाणों से निश्चित ज्ञान नहीं हो पाता है। अतः तृतीय वर के रूप में नचिकेता आत्मा का स्वरूप को जानना चाहता है।[7]यम नचिकेता के इस प्रश्न पर उसकी अल्पायु को देखते हुए उसे अन्य सांसारिक सुख सुविधाओं का प्रलोभन देते हैं। नचिकेता को शतायु होने, बेटे, पोते, असंख्य पशु, हाथी, स्वर्ण, विशाल भूभाग का

[7] येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्ट्रस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीय: ॥२०॥

स्वामित्व तथा इच्छानुसार जीवन का प्रलोभ।[8] कामानां त्वा कामभाजं करोमि यह कहकर अपनी इच्छानुसार काम पूर्ति का वरदान।[9], मनुष्य लोक में जितने भी भौतिक सुख सुविधाएं दुर्लभ है सभी भोग का प्रलोभन।[10]इमा रामाः सरथाः सतूर्या कहकर यम नचिकेता को विभिन्न प्रकार के भौतिक सुख सुविधाओं का प्रलोभन देते है। किंतु स्थित प्रज्ञ नचिकेता उस आत्म रहस्य के बारे में अडिग रहता है और यम से कहता है कि आपने जितने ही भोगों का उल्लेख किया है वे सभी अल्पायु हैं नश्वर हैं और इंद्रिय के तेज को जीर्ण कर देने वाले हैं और अंत में एक और बात कहते हैं कि न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो[11] नचिकेता इन सारी मिथ्या भोगों के प्रलोभन को छोड़कर यम से प्रार्थना करता है कि ही आप हमको आत्म रहस्य को ही बताइए इसके अतिरिक्त मुझे अन्य कोई भोग नहीं चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा गया है कि यह शरीरी (आत्मा) न कभी जन्मता है और न मरता है तथा यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला नहीं है। यह जन्मरहित, नित्य-निरन्तर रहनेवाला, शाश्वत और पुराण (अनादि) है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वाऽभविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥[12]

इसके स्वरूप को और भी स्पष्ट करते हुए ये कहा गया कि यह आत्मा काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, यह गीला नहीं किया जा सकता और यह सुखाया भी नहीं जा सकता। कारण कि यह नित्य रहनेवाला सबमें परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाववाला और अनादि है-

---

[8] शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३॥

[9] एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्त चिरजीविकां च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥

[10] ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाश्छन्दतः प्रार्थयस्व।इमा रामाः सरथाः सतूर्या न आभिर्मत्प्रत्ताभिः हीदृशा लभ्यनीया मनुष्यैः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥

[11] न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥

[12] भगवद्गीता २/२०

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातन:॥[13]

कठोपनिषद् में भी इसके स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है कि यह बुद्धिमान (आत्मा) न जन्म लेता है, न मरता है। यह न किसी से उत्पन्न हुआ है, न इससे कोई उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता-

न जायते प्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतचिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥[14]

कठोपनिषद में ही और भी सूक्ष्मतम वर्णन करते हुए कहा गया है कि आत्मा अणु से भी सूक्ष्मतर, महान् से भी महत्तर, 'आत्मतत्त्व' प्राणी की हृद्-गुहा में निहित है। जब मनुष्य अपने आपको कामादि संकल्पों से मुक्त एवं शोक से रहित कर लेता है तब वह 'उसका' दर्शन करता है। मानसिक प्रवृत्तियों की शुद्धि के प्रसाद से वह 'आत्म-सत्ता' की महिमा का दर्शन करता है।

अणोरणीयान् महतोमहीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मन:।।15

जन्म और मृत्यु के संबंध में आत्मा की वास्तविकता का विवेचन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही देही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होता है।।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥[16]

---

[13] भगवद्गीता २/२४

[14] कठोपनिषद १/२/१८

[15] कठोपनिषद १/२/२०

[16] भगवद्गीता २/२२

आत्मा सदा निर्विकार हैं क्योंकि आत्मा को शस्त्र नहीं काटते अभिप्राय यह कि अवयवरहित होनेके कारण तलवार आदि शस्त्र इसके अङ्गोंके टुकड़े नहीं कर सकते। वैसे ही अग्नि इसको जला नहीं सकता अर्थात् अग्नि भी इसको भस्मीभूत नहीं कर सकता। जल इसको भिगो नहीं सकता क्योंकि सावयव वस्तुको ही भिगोकर उसके अङ्गोंको पृथक्पृथक् कर देनेमें जलकी सामर्थ्य है। निरवयव आत्मामें ऐसा होना सम्भव नहीं। उसी तरह वायु आर्द्र द्रव्यका गीलापन शोषण करके उसको नष्ट करता है अतः वह वायु भी इस स्वस्वरूप आत्माका शोषण नहीं कर सकता।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥[17]

अतः यह कहा जा सकता है कि आत्मा का ज्ञान ही भारतीय दर्शन का परम प्रयोजन है, और यही ज्ञान मनुष्य को अविद्या, भय, शोक और बंधन से मुक्त कर परम पुरुषार्थ एवं मोक्ष की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करता है।

निष्कर्ष : -

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से निष्कर्षित होता है कि भगवद्गीता में 'कर्तव्य' (कर्म-धर्म) और 'आत्मबोध' (आत्मज्ञान) दो पृथक या विरोधी अवधारणाएँ नहीं हैं, बल्कि भारतीय दार्शनिक परम्परा में जीवन-दर्शन के दो परस्पर पूरक एवं समन्वित आयाम हैं। गीता का केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि मनुष्य लौकिक जीवन में अपने सामाजिक, नैतिक एवं व्यक्तिगत दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी आध्यात्मिक मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकता है। इस प्रकार गीता कर्म और ज्ञान के द्वैत को समाप्त कर एक समन्वयवादी दर्शन प्रस्तुत करती है। शोध से यह प्रतिपादित होता है कि गीता में कर्तव्य की अवधारणा 'स्वधर्म', 'निष्काम कर्म' तथा 'लोकसंग्रह' के सिद्धान्तों पर आधारित है। स्वधर्म व्यक्ति की प्रकृति एवं

[17] भगवद्गीता २/२३

गुण-कर्म के अनुरूप कर्तव्य निर्धारण करता है, निष्काम कर्म कर्मफल की आसक्ति से मुक्त होकर कर्म करने की प्रेरणा देता है तथा लोकसंग्रह सामाजिक कल्याण एवं सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को पुष्ट करता है। इस प्रकार गीता का कर्तव्य-दर्शन केवल व्यक्तिगत नैतिकता तक सीमित न होकर सामाजिक और वैश्विक नैतिक व्यवस्था का आधार प्रदान करता है।

आत्मबोध के संदर्भ में यह अध्ययन दर्शाता है कि भगवद्गीता उपनिषदों के आत्मतत्त्व को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करती है। आत्मा को नित्य, अविनाशी, अजन्मा और शाश्वत तत्व के रूप में निरूपित किया गया है, जो शरीर, मन और बुद्धि से भिन्न एवं परे है। आत्मबोध के माध्यम से जीव अविद्या, अहंकार और कर्मबन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप की अनुभूति करता है। इस प्रकार आत्मज्ञान को मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन माना गया है, जबकि कर्मयोग को चित्तशुद्धि का साधन स्वीकार किया गया है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य के भाष्यों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यद्यपि तीनों आचार्यों की दार्शनिक दृष्टि भिन्न-भिन्न (अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत) है, तथापि वे सभी गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय को स्वीकार करते हैं। इससे गीता की दार्शनिक सार्वभौमिकता और समन्वयात्मक प्रकृति सिद्ध होती है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह शोध प्रमाणित करता है कि गीता का कर्तव्य-दर्शन और आत्मबोध-दर्शन केवल आध्यात्मिक ग्रन्थ तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नैतिक दर्शन, शिक्षा, प्रशासन, प्रबंधन, नेतृत्व, मनोविज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों में भी अत्यन्त प्रासंगिक है। निष्काम कर्म की अवधारणा आधुनिक कार्य-संस्कृति, तनाव प्रबंधन और नैतिक नेतृत्व के लिए एक प्रभावी दार्शनिक आधार प्रदान करती है, जबकि आत्मबोध मानसिक शान्ति, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व विकास का मूल तत्त्व बनता है।

अतः यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भगवद्गीता में कर्तव्य और आत्मबोध का समन्वित दर्शन मानव जीवन के लौकिक और पारलौकिक दोनों आयामों को संतुलित करने वाला एक सार्वकालिक और

सार्वभौमिक जीवन-दर्शन है। गीता मनुष्य को कर्मशील, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से जागरूक नागरिक बनाने की प्रेरणा देती है तथा मानव अस्तित्व के समग्र उत्थान के लिए एक समन्वित दार्शनिक आधार प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची : -

1. गोयन्दका, श्रीहरिकृष्णदास. भगवद्गीता शांकरभाष्य हिन्दी अनुवादसहित. गीता प्रेस, गोरखपुर.
2. गोयन्दका, श्रीहरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद् शांकरभाष्य सहित. गीता प्रेस, गोरखपुर.
3. मिश्र, आद्या प्रसाद. कठोपनिषद. अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद. १९८३.
4. पाण्डेय, बैजनाथ. कठोपनिषद शांकरभाष्य सहित. मोतीलाल बनारसी दास, बनारस. २०१९.
5. दास, त्रिभुवनस्वामी. ईशावास्योपनिषद. चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली. २०१४.